ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-9* October- 2017
Innovation The Research Concept

महिला सशक्तिकरण के भारतीय सन्दर्भ – एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

जगजीत सिंह कविया
व्याख्याता,
समाजशास्त्र विभाग
राजकीय लोहिया महाविद्यालय,
चूरू, राजस्थान

सारांश

वर्तमान भारतीय समाज में महिला की सामाजिक स्थिति के सिंहावलोकन से एक तथ्य बिल्कुल स्पष्ट है कि वह जहां दिन–प्रतिदिन विकास के नए प्रतिमान स्थापित कर रही है, वहीं परम्पराओं व सामन्ति चेतनाओं के चलते आज भी किसी ना किसी रूप में शोषण, उत्पीड़न एवं हिंसा का शिकार हो रही है।

ऐसे माहौल में महिला की स्वतन्त्र छवि के लिए महिला स्वतन्त्रता की चहुंओर से मांग उठना लाजमी है। वैश्वीकरण के इस युग में महिला की उपरोक्त छवि सशक्तीकरण के तार्किक प्रयासों से ही सम्भव की जा सकती है। महिला के पास एक अपने तरह का व्यक्तित्व है जो पुरुष से बहुत भिन्न है, बहुत विरोधी, बहुत अलग, बहुत दूसरा है। उसका सारा आकर्षण उसके जीवन की सारी सुगन्ध, उसके अपने होने में है, उसके निज होने में है। इसलिए महिला, महिला की तरह बची रहे तभी वह स्वतंत्र, समान, सशक्त तथा सम्माननीय हो सकती है। पुरुष की नकल तो उसे और दोयम दर्जे की स्थिति में लाकर गुलाम और कमजोर बना देगी। यह बात महिलाओं को गम्भीरता से महसूस करनी चाहिए।

भारतीय महिलाओं को एक अतिरिक्त सावधानी यह भी बरतनी चाहिए कि वे पश्चिमी महिलावादी विमर्श को अपना आदर्श न मानें। क्योंकि पश्चिमी संस्कृति में महिला की स्वतन्त्रता के मायने में एकल जीवन सुरक्षा, बिना विवाह के पुरुष के साथ रहने की स्वीकृति, कुआंरी मां बनने की स्वीकृति, तलाक की सुविधा, विवाहोतर यौन सम्बन्ध जैसे स्वछन्दता के प्रतिमान शामिल हैं। भारतीय महिलाओं की स्वतन्त्रता और समानता की रूपरेखा यहां की नैतिकता, परम्परा, संस्कृति और सभ्यता को ध्यान में रखकर तय करनी होगी। उन्हें यह स्वीकारना चाहिए कि भारतीय महिला के लिए सुखद दाम्पत्य और किलकते बच्चों की तुलना में शरीर और यौन सम्बन्धी जरूरतें गौण महत्व की होती हैं।

मुख्य शब्द : सबलीकरण, लिंगानुपात, ऑनर किलिंग, नव आर्थिक उदारवाद, ग्लोबल विलेज, पावर वूमैन।

प्रस्तावना

किसी देश की आर्थिक–सामाजिक संरचना में जब विकास के बीज डाले जाते हैं, प्रगति की सिंचाई की जाती है, बुद्धि की खाद पड़ती है तो संरचना में नयी फसल नई सोच के साथ उगती है। देश के आर्थिक–सामाजिक विकास के सन्दर्भ में यह गहराई से अनुभव किया गया कि देश की आधी आबादी का यदि सुचित विकास नहीं हुआ तो प्रगति सम्भव नहीं है। स्त्री–पुरुष की विकास कार्यों में सहभागिता ही देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है। इसी के मध्यनजर महिलाओं को सक्षम, योग्य, शिक्षित और प्रगतिशील के रूप में महिला सशक्तीकरण की चर्चा चहुंओर हो रही है।

अध्ययन उद्देश्य

1. वर्तमान भारतीय समाज में महिलाओं की सामाजिक स्थिति को ज्ञात करना।
2. उन सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों को ज्ञात करना, जो भारतीय महिला के बराबरी के हक में बाधक है।
3. वर्तमान सन्दर्भों में महिला सशक्तिकरण की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।
4. भारतीय महिला का यह सशक्तिकरण पश्चिम से किस प्रकार भिन्न है।
5. महिला सशक्तिकरण के सन्दर्भ में कानूनों की भूमिका को ज्ञात करना।

महिला सशक्तीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है, जिसके तहत उन्हें पारिवारिक, सामुदायिक एवं सामाजिक विषयों में निर्णय लेने के अधिकार प्रदान किये जाने के साथ उनमें निर्णय लेने की क्षमता को विकसित करना है ताकि वे

सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन की दिशाओं को प्रभावित कर सकें।

इन सन्दर्भों में महिला सशक्तीकरण समाज में महिलाओं के साथ होने वाले अन्याय, भेदभाव एवं उत्पीड़न के विरूद्ध एक जागरूक आन्दोलन है, जिसका लक्ष्य उन्हें भौतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक संसाधनों पर नियन्त्रण एवं पारिवारिक, सामुदायिक व सामाजिक विषयों पर निर्णय में न्यायोचित भागीदारी प्रदान करता है, जिससे जीवन के विविध क्षेत्रों में वे एक गरिमामय–सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।

यद्यपि भारत सहित विश्व के अधिकांश देशों में महिलाएं भेदभाव का शिकार होती है, सभी स्तरों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया से उन्हें बाहर रखकर उन्हें वंचित किया गया है। इन्हीं भेदभावों के चलते महिलाओं के मुक्ति के सन्दर्भ में आज विश्व के हर कोने में महिला सशक्तीकरण की बात की जा रही है। परन्तु भारतीय महिलाओं का सबलीकरण पश्चिम की विचारधारा से पृथक् एवं भिन्न है। पश्चिम में सशक्तीकरण के केन्द्र में देह से मुक्ति, व्यक्तिवाद, भौतिकवाद के सुखों की प्राप्ति है, वहीं भारतीय सन्दर्भों में यह भिन्न प्रकार का सशक्तीकरण है। क्योंकि भारतीय समाज व्यवस्था पश्चिम से उल्ट परिवारवाद, सामूहिकता एवं पारलौकिक सुख पर आधारित है।

इससे कदाचित यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि अन्य देशों की भांति यहां भी महिलाएं भेदभाव का शिकार, वंचित एवं अधिकारी विहीन, संसाधनों पर मुक्त हो गयीं हैं। यहां भी महिला इन शोषणकारी तत्वों से झूज रही है। परन्तु उसके सामाजिक सांस्कृतिक सन्दर्भ भिन्न हैं।

प्रस्तुत शोध–पत्र में भारतीय समाज में व्याप्त बुनियादी भिन्नताएं यथा महिलाओं का लिंगानुपात, महिला शिक्षा, उनके प्रति अपराध एवं शोषण, राजनैतिक गलियारों में प्रतिनिधित्व, महिला स्वास्थ्य जैसे मौलिक प्रश्नों के सन्दर्भ में सशक्तीकरण का खाका खिंचा गया है।

महिला सशक्तीकरण के सन्दर्भ में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि भारत में महिलाएं लगभग 48 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनमें भिन्न जातियों, धर्मों, वर्गों एवं समुदायों से इनका प्रतिनिधित्व है और प्रत्येक श्रेणी की अपनी पृथक् विशेषताएं एवं समस्याएं हैं। इसलिए इनकी समस्याओं के बारे में अनुमान लगाना कठिन कार्य है।

भारतीय सन्दर्भ में महिला के सशक्तीकरण के सन्दर्भ में भारतीय समाज में महिला की निम्न सामाजिक स्थिति से जुड़े मुद्दों की क्रमवार चर्चा यथोचित है' चूंकि भारतीय सन्दर्भों में शताब्दियों से महिलाएं पुरुषों की मुखापेक्षी/आश्रित रही हैं।

घटता लिंगानुपात

भारतीय समाज में पितृ सत्तात्मकता एवं सामाजिक–सांस्कृतिक मान्यताओं के चलते बेटी को सदा से ही बोझ समझा गया और भिन्न–भिन्न कालों में उसे गर्भ में या जन्मोपरान्त मारने की अलग विधियां निर्मित की गयी, जिसका सामूहिक नतीजा यह निकला कि आज लिंगानुपात महिलाओं के पक्ष में नहीं है। 2011 की जनगणना में यह 940, वर्ष 2001 में 933, आजादी के समय (1951) में 946 तथा शताब्दी के प्रारम्भ (1901) में 972 पाया गया।

लिंगानुपात के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि समाज के साधन–सम्पन्न क्षेत्रों में कन्या भ्रूण हत्या की प्रवृति अधिक पायी गयी है तुलनात्मक रूप से पिछड़े और आदिवासी इलाकों के।

यह प्रवृति स्पष्ट संकेत देती है कि शिक्षा, जिसे हमने हर बीमारी का मर्ज माना था उसके नकारात्मक पक्ष सामने आ रहे हैं। आज की पढ़ी–लिखी पीढ़ी परिवार का आकार तो छोटा चाहतीं हैं परन्तु उस परिवार का सदस्य लड़की को नहीं बनाना चाहती। इस सन्दर्भ में भारत व कनाडा के अध्ययन दल ने अपनी शोध रिपोर्ट–2006 में प्रस्तुत की और कहा कि भारत में पिछले दो दशकों में एक करोड़ कन्या भ्रूण हत्याएं की गयी। यह तथ्य चौंकाने वाला है। यदि इसी प्रकार समाज से बंटियां विलुप्त होती रहीं तो समाज की निरन्तरता पर ही प्रश्नवाचक चिह्न लग जाएगा।

अल्प साक्षरता

शिक्षा सामाजिक सबलीकरण का मूलभूत साधन है। अब यह माना जाने लगा है कि शिक्षा ही वह उपकरण है, जिससे महिला समाज में उपयोगी व सशक्त भूमिका दर्ज करा सकती है।

लेकिन भारतीय समाज में स्त्रियों की शिक्षा की दर सदैव से ही कम रही है। यही कारण है कि महिलाएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र यथा– आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में शोषण एवं अत्याचार की शिकार रही है। महिलाओं में शिक्षा के अभाव के चलते ही उनमें आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास की कमी है, जिसके कारण वह अपनी समस्याओं का स्वतः ही समाधान करने में समर्थ नहीं हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त वर्ष 1951 में महिला साक्षरता दर 8.86 प्रतिशत थी, जो वर्ष 2001 में बढ़कर 54.16 प्रतिशत तथा वर्ष 2011 की जनगणना में बढ़कर 65.46 प्रतिशत हो गयी है। अर्थात् प्रत्येक तीन में से दो लड़कियां साक्षर हैं।

विश्वभर में प्राथमिक शिक्षा से वंचित बच्चों का 60 प्रतिशत भाग लड़कियों का है। बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान ऐसे राज्य हैं, जहां एक ओर लड़कियों की नामांकन दर कम है, वहीं दूसरी ओर उनके स्कूल छोड़ने की दर भी अधिक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महिलाओं में अल्प साक्षरता उनके दमन, शोषण की प्रमुख वजह है।

स्वास्थ्य एवं महिलाएं

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में महिला स्वास्थ्य भी एक गम्भीर चुनौति है। भारतीय महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति इसी सूचकांक से स्पष्ट हो जाती है कि यहां लगभग 50 प्रतिशत महिलाएं एनिमिया की शिकार हैं।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के उत्पादन कार्यों में महिलाएं 80 प्रतिशत तक योगदान देती हैं। महिला के कन्धे पर ही वर्तमान अर्थव्यवस्था के विकास के साथ–साथ भावी अर्थव्यवस्था की नींव भी टिकी होती है।

भारत में महिलाओं के स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कारकों में उनका कम आयु में विवाह (बाल विवाह), उच्च प्रजनन क्षमता, महिला का गृहणी व माता की भूमिका का आदर्शीकरण, सामाजिक–सांस्कृतिक मानदण्ड आदि कारक प्रमुख हैं।

श्रम व रोजगार के क्षेत्र में महिलाएं

समाान कार्य के लिए महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम वेतन दिया जाता है। आबादी का आधा हिस्सा होते हुए महिलाएं 2/3 काम करती हैं, परन्तु उनके काम का 1/3 ही दर्ज हो पाता है। 70 प्रतिशत महिलाएं खेती का कार्य करती हैं, परन्तु एक प्रतिशत भूमि पर उन्हें स्वामित्व प्राप्त है, इससे भी बड़ी विडम्बना उनके द्वारा किए जाने वाले खेती–बाड़ी, पशुपालन एवं घरेलू काम–काज को राष्ट्रीय आय में गणना नहीं की जाती और उन्हें आज भी 'कृषक' के नाम से भी मरहूम रहना पड़ रहा है।

सरकारी सेवा के क्षेत्र में देखें तो यहां भी पढ़–लिख कर महिलाएं प्रशासनिक सेवाओं में चयनित तो हो रहीं हैं लेकिन उन्हें रक्षा, विदेश मामलों सरीखे विभागों में नियुक्त ना कर कम महत्व के महकमों में दी जा रही नियुक्ति भी समाज की पुरुष मानसिकता को स्पष्ट कर रही है।

इसके अतिरिक्त महिलाएं सार्वजनिक और निजी सेवाओं में कम नियुक्त की जाती हैं, परन्तु छंटनी के समय सर्वाधिक महिलाएं शिकार होती हैं, जिसका उनके आत्मनिर्भरता सहित आत्मविश्वास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

राजनैतिक गलियारों में महिलाएं

महिलाओं की उन्नति व विकास के लिए आवश्यक है कि महिलाओं का राजनैतिक सशक्तीकरण हो, उनकी सहभागिता का स्तर उच्च हो। ऐसा होने पर ही लैंगिक आधार पर एक समतापूर्ण समाज की स्थापना होगी। लेकिन वास्तविकता यह है कि राजनैतिक परिदृश्य में आज भी महिलाओं की भूमिका बहुत सार्थक नहीं मानी जा सकती। वर्तमान 15वीं लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या 51 ही है।

यद्यपि पंचायतों के माध्यम से महिला सबलीकरण को मूर्त रूप देने का प्रयास किया गया है, लेकिन यह प्रयास भी पुरुष मानसिकता से मुक्त होता नजर नहीं आ रहा है, वहां भी 'पति–सरपंच' जैसी अवधारणा ने अपनी गहरी पैठ जमा रखी है।

इन सबके साथ–साथ लोकसभा तथा विधानसभाओं में महिलाओं के 1/3 स्थानों के आरक्षण का बिल दो दशकों से पुरुष मानसिकता के चलते कानून का रूप नहीं कर पाया है।

बेटा–बेटी में भेदभाव एवं कन्या भ्रूण हत्या

पुरुष प्रधान समाज में बेटा एवं बेटी के साथ समान व्यवहार नहीं होता है। सामाजिक परम्पराओं के चलते पुत्र के जन्म को आवश्यक समझा जाता है। पुत्र के जन्म पर खुशी मनाई जाती है, शुभकामनाएं भेजी जाती हैं, दावतें दी जाती हैं, वहीं पुत्री के जन्म पर पारिवारिक माहौल में उदासीनता छा जाती है।

पुत्रियों के जन्म के प्रति इस उदासीनता या अनचाहत को उनके नामकरण के सन्दर्भ में आज भी गांवों में किसी ना किसी रूप में अनुभव किया जाता है। जहां पहली लड़की के जन्म के उपरान्त दूसरी लड़की के पैदा होने पर उसका नाम– रामप्यारी, हरप्यारी, तीसरी का नाम मनभरी तथा चौथी का नाम अन्तिमा, चूकी या ऐसा कोई नाम रख दिया जाता है।

हम स्वयं को सभ्य ठहरा कर आसानी से कह देते हैं कि प्राचीन एवं मध्यकालीन समाज में महिलाओं की दशा अत्यन्त हीन एवं चिन्ताजनक थी, किन्तु क्या वर्तमान में भी ऐसा ही नहीं है? यदि नहीं है तो फिर कन्याओं को जन्म से पहले ही विज्ञान व प्रौद्योगिकी के द्वारा मां के गर्भ में पल रहे बच्चे का लिंग परीक्षण कर लड़की होने पर उसे गर्भ में ही मौत की नींद सुला दिया जाता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में गत दो दशकों में एक करोड़ कन्या भ्रूण हत्या किये जाने सम्बन्धित आंकड़े भारत व कनाडा के संयुक्त अध्ययन दल द्वारा वर्ष 2006 में जारी किए गए। इस रिपोर्ट में सबसे चौंकाने वाला तथ्य यह था कि इस कृतसित प्रयास में शिक्षित एवं संभ्रात परिवार, गरीब एवं अनपढ़ परिवारों की तुलना में अधिक सक्रिय है।

तेजी से असन्तुलित होते लिंगानुपात का खामियाजा जीवन साथी, समाज सहित सामाजिक रिश्तों पर भी पड़ता नजर आ रहा है। बुआ, मौसी, साली, बहन जैसे नातेदार परिवार से लुप्त हो रहे हैं। वहीं रक्षाबन्धन जैसे सामाजिक अनुष्ठानों पर भी नकारात्मक प्रभाव से नजर आ रहा है।

उभरते नव आर्थिक उदारवाद ने महानगरों में कामकाजी दम्पतियों का एक बहुत बड़ा वर्ग खड़ा कर दिया है। इनका तर्क है कि नौकरी एवं परिवार की दोहरी जिम्मेदारी के चलते एक सन्तान को ही जन्म दिया जाए, लेकिन वे सन्तान के रूप में केवल पुत्र को ही जन्म देना चाहते हैं। इनकी इसी दूषित मानसिकता से भी कन्या भ्रूण हत्या की प्रवृति महानगरों में तेजी से बढ़ी है।

महिला उत्पीड़न

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि सर्वप्रथम स्त्री ने ही पुरुष को घर बनाकर रहने की प्रेरणा दी। आज इसी महिला को शारीरिक, यौनिक, मानसिक एवं भावनात्मक उत्पीड़न का सामना करना पड़ रहा है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के आंकड़ों पर दृष्टिगत करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि भारत में हर दिन 45 महिलाएं बलात्कार का शिकार होती है, 31 लड़कियों की हर दिन तस्करी की जा रही है, 21 महिलाओं की हर दिन दहेज हत्या की जा रही है।

भूमण्डलीकरण के कारण उपजे नवपूंजीवाद समाज में औरत तरह–तरह से बाजार में बेची और खरीदी जाती है। उभरते पूंजीवाद ने औरत को वैचारिक धरातल के स्थान पर वस्तु के रूप में उसकी छवि को कामुकता और नग्नता को खुले बाजार में नयी परिभाषा दी है।

वैश्वीकरण के कारण सम्पूर्ण विश्व **'ग्लोबल–विलेज'** में रूपान्तरित हो रहा है। लेकिन इस उदारीकरण की बयार में सामन्ति मूल्य आज भी सिर उठाए हुए हैं, जिसका एक प्रकार 'मान हत्या' (ओनर किलिंग) के रूप में देखने को मिलता है जहां जातीय प्रतिष्ठा की दुहाई

देकर 'जातीय पंचायतों' द्वारा विजातीय जोड़ों को मौत के घाट उतार दिया जाता है।

महिला उत्पीड़न पुरुष शक्ति का महिला की शारीरिक कमजोरी पर एक सीधा प्रक्षेपण है। समाज में कहीं ना कहीं लैंगिक आधार पर शक्ति असन्तुलन को बढ़ाने में नव आर्थिक उपनिवेशवाद ने आग में घी का काम किया है।

दहेज और समाज

परम्परा के अनुसार विवाह के समय लड़की को गृहस्थ चलाने के लिए जो आवश्यक थोड़ी–बहुत चीजें भेंट की जानी थी, कालान्तर में रूढ़ियों की जकड़न के कारण इन चीजों को समाज में दहेज के रूप में जाना जाने लगा। वर्तमान में यह व्यवस्था अपनी पराकाष्ठा पर है और इसने समाज को अपनी जकड़न में ले लिया है। आज दहेज ने एक व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है। भविष्य में परिवार को समृद्ध बनाने के साधन के रूप में इसे मान्यता मिल चुकी है। दहेज के चलते लड़की तथा उसके पिहर पक्ष पर निरन्तर दबाव एवं अत्याचार किए जाते हैं। दहेज के मनोवैज्ञानिक भय के चलते लड़कियों तथा उनके माता–पिताओं को आत्महत्या तक करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। अपने इन्हीं विध्वंसात्मक अर्थों के चलते दहेज समाज पर कलंक है।

कामकाजी महिलाएं

वे महिलाएं जो घरेलू काम–काज के अतिरिक्त समाज में संगठित अथवा असंगठित क्षेत्रों में कार्य रूप में अपनी दोहरी भूमिकाओं का निर्वहन कर रही हैं, कामकाजी महिला की श्रेणी में आती हैं। इन महिलाओं में पुरुषों के समान योग्यता, क्षमता होने के बावजूद सामन्ति तथा पुरूष–सत्तात्मक चेतनाओं के चलते इनके कार्यों में भेद किया जाता है। प्रशासन में इन्हें कम महत्व के विभाग एवं जिम्मेदारियां दी जाती हैं। इन्हें पुरुषों से कम वेतन दिया जाता है, नियुक्ति के समय भी इनका प्रतिशत पुरुषों की तुलना में कम होता है, लेकिन छंटनी इनकी सबसे पहले की जाती है। इसके साथ ही कई बार इन्हें अपने सहकर्मियों से भद्दे इशारे आदि रूपों में यौन उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है।

नव–आर्थिक उदारवाद ने महिलाओं के लिए रोजगार के अनेक नए अवसर तो प्रदान कर दिए हैं परन्तु संवेदनायुक्त नव–समाज का निर्माण करने में असफलता के चलते भूमण्डलीकरण महिला के लिए दोहरे शोषण का तन्त्र बन गया है। जहां उसे घर एवं बाहर दोनों जगहों पर शोषण के दंशों को झेलने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है।

महिला के साथ समाज में होने वाले भेदभाव की अन्य मरिचिकाएं

1. नारी के विधवा या पुत्रहीन होने में उसका कोई दोष नहीं है लेकिन फिर भी उसे अपशकुनी माना जाता है जबकि लंगड़े–लूले, विधुर, पागल, बावले आदि सभी प्रकार के पुरुष हर प्रकार से शुभ माने जाते हैं।
2. महिला के मानवाधिकारों की जमीनी हकीकत का पता इस अध्ययन रिपोर्ट से ही चल सकता है कि भारत में प्रतिवर्ष पैदा होने वाली 15 लाख बच्चियों में से लगभग 1.5 लाख बच्चियां अपने पहले जन्मदिन से पूर्व तथा लगभग 25 प्रतिशत बच्चियां 15वां जन्मदिन देखने से पूर्व ही मर जाती हैं।
3. मुस्लिम सरियत में दो महिलाओं की गवाही एक पुरुष के बराबर है।
4. भारत गांवों का देश है जहां 69 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांवों में रहती है। लेकिन ग्रामीण महिलाओं में विशेषतः दलित परिवारों की महिलाओं की दशा शोचनीय है। जहां आज भी इन्हें बलात्कार, यौनशोषण जैसी घटनाओं का शिकार होना पड़ता है। अशिक्षित होने के कारण इनमें न तो सामाजिक चेतना है और न ही आत्मबल। शोषण व यौन उत्पीड़न के विरूद्ध आवाज न उठाने के कारण उसका निरन्तर शोषण जारी है।
5. बलात्कार की घटना के बाद बदनामी एवं समाज की सन्देहास्पद निगाहों का निशाना निर्दोष नारी को झेलना पड़ता है।
6. विधवा स्त्री आज भी शादी, सन्तान उत्पत्ति, जन्मदिन जैसे सामाजिक उत्सवों पर आगे आकर भाग नहीं ले सकती है।
7. विवाहित जोड़े के सन्तान नहीं होने पर बांझपन का अभिशाप नारी को भुगतना पड़ता है जबकि इसके लिए स्त्री व पुरुष दोनों के जिम्मेदार होने की समान सम्भावना होती है।
8. बिन ब्याही मां, तलाकशुदा महिला, महिला–वेश्या के लिए पृथक् से सम्बोधन है, लेकिन जो पुरुष इन कृत्यों में संलिप्त होता है उसके लिए पृथक् से कोई सम्बोधन नहीं है।
9. भेदभाव का यह स्वरूप परिवार नियोजन के साधनों में भी देखा जा सकता है जहां पुरुष जननांग इस हेतु अधिक उपयुक्त है लेकिन पुरुषवादी मानसिकता के चलते महिला को जबरन इनके लिए तैयार होना पड़ता है।
10. छोटी बच्चियों को छोटे लड़कों की तुलना में कम अवधि तक मां का स्तनपान करवाया जाता है। यही कारण है कि लड़कियों में कुपोषण अधिक होता है।
11. विज्ञापन की संस्कृति ने स्त्री की देह को एक वस्तु के रूप में प्रचारित व प्रसारित किया है।
12. भूमण्डलीकरण ने महिलाओं को शैक्षणिक, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्रों में आए अवसर प्रदान कर समाज में उसकी छवि को **पावर वूमेन** के रूप में स्थापित किया है। लेकिन यहां भी उसे पुरुषवादी मानसिकता का शिकार होना पड़ रहा है, पुरुषों के बराबर पद होते हुए भी प्रशासनिक सेवाओं में उसे गृह, रक्षा, वित्त मंत्रालयों के स्थान पर कार्मिक जैसे विभाग दिये जा रहे हैं।

इन मरिचिकाओं से स्पष्ट है कि बड़ी ही चतुराई से स्त्री की रचनात्मक, सृजनात्मक एवं बौद्धिक प्रतिभा को नकार कर, स्त्री को एक बौद्धिक प्राणी नहीं अपितु एक देह, एक वस्तु, एक भोग्य पदार्थ, एक खिलौने की तरह परिभाषित, प्रचारित एवं स्थापित किया जा रहा है। जो कि सीधा–सीधा महिलाओं के मानवाधिकारों का स्पष्ट उल्लंघन है। इन समस्त मरिचिकाओं के अन्तर्बोध को आज बदले जाने की आवश्यकता है।

महिला सशक्तीकरण के भारतीय सन्दर्भ

वर्तमान भारतीय समाज में महिला की सामाजिक स्थिति के उपरोक्त सिंहावलोकन से एक तथ्य बिल्कुल स्पष्ट है कि वह जहां दिन–प्रतिदिन विकास के नए प्रतिमान स्थापित कर रही है, वहीं परम्पराओं व सामन्ति चेतनाओं के चलते आज भी किसी ना किसी रूप में शोषण, उत्पीड़न एवं हिंसा का शिकार हो रही है। समकालीन परिदृश्य को महिला के सन्दर्भ में संक्रमण काल कहना ज्यादा स्टीक होगा।

ऐसे माहौल में महिला की स्वतन्त्र छवि के लिए महिला स्वतन्त्रता की चहुंओर से मांग उठना लाजमी है। वैश्वीकरण के इस युग में महिला की उपरोक्त छवि सशक्तीकरण के तार्किक प्रयासों से ही सम्भव की जा सकती है, जिसे कि आज वक्त के कैनवास पर महिला के भविष्य का स्केच तक कहा जा रहा है।

महिला सशक्तीकरण को आज आवश्यकता के रूप में स्थापित करने से पूर्व हमें महिला से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सावधानी बरतनी चाहिए ताकि भूतकाल की गलतियों की पुनरावृत्ति न हो। जैसे समाज में महिला के शोषण का प्रमुख आधार सामाजिक वर्जनाओं के आधार पर लिंग भेद रहा हैं जबकि भिन्नता शरीर की भिन्नता से तय होती है और शरीर की भिन्नता के आधार पर किसी को श्रेष्ठ–हीन नहीं समझा जा सकता है। इसीलिए सिमोन ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा ''शारीरिक भिन्नता के बावजूद ये सीमाएं औरत की अनिवार्य और स्थायी नियति के रूप में नही स्वीकारी जा सकती। शारीरिक भिन्नता यह नहीं स्थापित करती है कि औरत अन्याय, गौण या यौनजनित सोपानीकरण में नीचे की सीढ़ी में बैठी हुई है। ये जैविक परिस्थितियां औरत को अधीनस्थ भूमिका स्वीकारने के लिए मेरी समझ में बाध्य नहीं कर सकती।''

सावधानीपूर्वक इसलिये कि अक्सर ऐसा होता है कि शोषक वर्ग के विरूद्ध जब शोषित वर्ग संघर्ष करता है तो उसे अपनी मुक्ति शोषित वर्ग का प्रतिरूप बन जाने में ही दिखाई देती है। महिलावादी आन्दोलन भी इससे वंचित नहीं है। दुनियाभर में पुरुष वर्चस्व के खिलाफ जब महिलाओं ने विद्रोह किए तो अपनी आजादी पाने के बदले अपनी पहचान ही गवां बैठी। प्रतिरूप को मूल का पर्याय मानने के कारण वे एक हास्यास्पद अनुकरण की शिकार हो गई। वे एक मौलिक महिला बनने के बजाय नकली पुरुष बनने लगी। पुरुष जैसे कपड़े पहनने, बाल काटने, चलने–बोलने तथा शराब–सिगरेट पीदे आदि को ही अपनी आजादी समझने लगी, जबकि यह आजादी नहीं, पुरुषों की श्रेष्ठता स्वीकार कर लेने जैसी गुलामी ही है। यह ध्यान रहे महिला कि पास एक अपने तरह का व्यक्तित्व है जो पुरुष से बहुत भिन्न है, बहुत विरोधी, बहुत अलग, बहुत दूसरा है। उसका सारा आकर्षण उसके जीवन की सारी सुगन्ध, उसके अपने होने में है, उसके निज होने में है। अगर वह अपनी निजता के बिन्दु से च्युत होती है और पुरुष जैसा होने की दौड़ में लग जाती है तो यह बात इतनी हास्यास्पद होगी जैसे कोई पुरुष महिलाओं जैसा बनकर घूमने लगता है तो वह हास्यास्पद हो जाता है। इसलिए महिला, महिला की तरह बची रहे तभी वह स्वतंत्र, समान, सशक्त तथा सम्माननीय हो सकती है। पुरुष की नकल तो उसे और दोयम दर्जे की स्थिति में लाकर गुलाम और कमजोर बना देगी। यह बात महिलाओं को गम्भीरता से महसूस करनी चाहिए।

इसी तरह से महिला को आज के बाजारवाद व उपभोक्तावाद के शिकंजे से भी अपनी आजादी और अस्मिता को बचाए रखने की जरूरत है। आज उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए विज्ञापनों का सहारा लिया जाता है। महिलाएं इसका माध्यम बन रही हैं वे अपने रंग–रूप के सहारे इन उत्पादों को बेचने में लगी हैं और प्रकारान्तर से खुद अपना सौदा कर रही हैं। लेकिन उसे यहां सावधानी बरतनी है क्योंकि महिला की स्वतन्त्रता से तात्पर्य उसको वर्जनाओं की मुक्ति मिलने से है न कि वस्त्रों से मुक्ति मिलने से।

भारतीय महिलाओं को एक अतिरिक्त सावधानी यह भी बरतनी चाहिए कि वे पश्चिमी महिलावादी विमर्श को अपना आदर्श न मानें। क्योंकि पश्चिमी संस्कृति में महिला की स्वतन्त्रता के मायने में एकल जीवन सुरक्षा, बिना विवाह के पुरुष के साथ रहने की स्वीकृति, कुआंरी मां बनने की स्वीकृति, तलाक की सुविधा, विवाहोतर यौन सम्बन्ध जैसे स्वछन्दता के प्रतिमान शामिल हैं। भारतीय महिलाओं की स्वतन्त्रता और समानता की रूपरेखा यहां की नैतिकता, परम्परा, संस्कृति और सभ्यता को ध्यान में रखकर तय करनी होगी। उन्हें यह स्वीकारना चाहिए कि भारतीय महिला के लिए सुखद दाम्पत्य और किलकते बच्चों की तुलना में शरीर और यौन सम्बन्धी जरूरतें गौण महत्व की होती हैं। महिला की मुक्ति व समानता का अर्थ पुरुष से सर्वथा विलग होकर स्वायत्त महिला समाज का निर्माण कर लेना नहीं है, अपितु पुरुष के साथ रहते हुए उसका दृष्टिकोण बदल पाना है ताकि वह उसके साथ समान और सम्मानित व्यवहार कर सके। क्योंकि हमें समझना चाहिए महिला–पुरुष के पार्थक्य से परिवार टूटता है और उसका सर्वाधिक खामियाजा बच्चों को भुगतना पड़ता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि महिला की आजादी के लिए चलाई गई मुहिम को महिला बनाम पुरुष में बदलकर लड़ने के बजाय दोनों के सम्बन्धों को अधिकाधिक सहयोगात्मक बनाने की जरूरत है। महिला का उत्थान न केवल महिला के ही पक्ष में होगा वरन् पुरुष, समाज, राष्ट्र के लिए भी उतना ही हितकर होगा। हमें यह भी समझना होगा कि आधी जनसंख्या को साथ लिए बिना किया गया हमारा सारा विकास अधूरा एवं एकांगी होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कुमार विपिन (2009): वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तीकरण– विविध आयाम, रिगल पब्लिकेशन,नई दिल्ली।*
2. *सिंह, वी.एन., सिंह, जनमेजयसिंह (2010) : आधुनिकता एवं नारी सशक्तीकरण,रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।*
3. *सिंह, वी.एन., सिंह, जनमेजयसिंह (2012) : नारीवाद, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।*

4. *वर्मा, सरोज कुमार : सशक्तीकरण के भारतीय सन्दर्भ, (अक्टूबर 2008 योजना)।*
5. *मोहन, ममता : सशक्तीकरण एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण (जून 2012, योजना)।*
6. *भसीन, कमला : भारतीय सन्दर्भ में महिला सशक्तीकरण (1 सितम्बर, 2016, योजना)।*
7- *National Crime Records Berueau (2010) : Crime in India, Ministry of Home Affairs, New Delhi.*
8. *शर्मा, राजेन्द्र, प्रो. कमला प्रसाद (2009) : महिला मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन।*